[2021] 2 उम. नि. प. 1

नाजीर मोहम्मद

बनाम

जे. कमला और अन्य

[2010 की सिविल अपील सं. 2843-2844]

27 अगस्त, 2020

न्यायमूर्ति नवीन सिन्हा और न्यायमूर्ति (सुश्री) इंदिरा बनर्जी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 3] – द्वितीय अपील – प्रत्यर्थी-वादी द्वारा वादांतर्गत परिसरों के हक की घोषणा करने और कब्जे की बरामदगी के लिए वाद फाइल किया जाना – अपीलार्थी-परिवादी द्वारा वादांतर्गत परिसर के आधे भाग पर विक्रय विलेख और निर्मोचन विलेख के आधार पर स्वामित्व होने और शेष भाग पर प्रतिकूल कब्जे के आधार पर लगातार और संपूर्ण कब्जा होने का दावा किया जाना – जहां वादी द्वारा वादपत्र में यह उल्लेख तक न किया गया हो कि परिवादी-अपीलार्थी या उसके हित-पूर्वाधिकारियों द्वारा वादांतर्गत संपत्ति का किस तारीख को पट्टे के आधार पर कब्जा लिया गया था और यह भी उल्लेख तक न किया गया हो कि कब्जे की डिक्री प्राप्त करने का अनुतोष परिसीमा अवधि के भीतर किया गया है, वहां द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय द्वारा वादी को परिसरों के आधे भाग के संबंध में कब्जे की बरामदगी का हकदार होने का आदेश नहीं किया जा सकता था और उसे अपास्त करना न्यायोचित होगा ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – धारा 100 – द्वितीय अपील – पूर्ववर्ती शर्त – उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील को ग्रहण करने और विनिश्चित करने की पूर्ववर्ती शर्त मामलों में विधि के सारवान् प्रश्न का विद्यमान होना है और उच्च न्यायालय द्वारा प्रश्न विरचित करते

समय यह दर्शित करना आज्ञापक है कि मामले में विधि का प्रश्न और वह भी विधि का सारवान् प्रश्न अंतर्वलित है और जहां केवल द्वितीय अपील के ज्ञापन में उल्लिखित आधारों के प्रतिनिर्देश करते हुए द्वितीय अपील ग्रहण और मंजूर की गई हो, उसे कायम नहीं रखा जा सकता है ।

इन अपीलों के तथ्य इस प्रकार हैं कि वर्ष 1994 में प्रत्यर्थी, जिसे इसमें इसके पश्चात् 'प्रत्यर्थी-वादी' कहा गया है, ने वाद परिसरों के स्वामित्व की घोषणा करने, अपीलार्थी को प्रतिवादी होने के नाते वाद परिसरों का कब्जा प्रत्यर्थी-वादी को देने का निदेश देने, वाद परिसरों के संबंध में किराया बकायों/अधिभोग प्रभारों के संबंध में रु. 900/- का संदाय करने की डिक्री और भावी लाभों का संदाय के लिए डिक्री पारित करने का दावा करते हुए, जिला मुंसिफ, वलैंगैमन, कुंभकोनम के न्यायालय में 1994 के मूल वाद सं. 169 के अधीन वाद फाइल किया था । उक्त वाद में फाइल वादपत्र में यह अभिकथित किया गया था कि उक्त परिसरों को, जिन्हें प्रत्यर्थी-वादी के पिता ने तारीख 17 सितम्बर, 1940 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा क्रय किया था, मूल रूप से अपीलार्थी के पिता एम. अब्दुल अजीज को किराए पर दिया गया था । एम. अब्दुल अजीज की मृत्यु के पश्चात्, किराएदारी अपीलार्थी के नाम में मुख्तारनामा कर दी गई थी जो रु. 25/- प्रतिमाह किराया देने और अपेक्षित पंचायत कर का संदाय करने के लिए भी सहमत हुआ था । अपीलार्थी-प्रतिवादी ने वाद में अपना लिखित कथन फाइल किया, जिसमें उसने वाद परिसरों में प्रत्यर्थी-वादी के हक और/या स्वामित्व से इनकार किया और यह भी दलील दी कि अपीलार्थी-प्रतिवादी किराएदार नहीं था । अपीलार्थी-प्रतिवादी ने उन परिसरों के पूर्ण स्वामित्व का दावा किया जिन्हें उसने अपने पिता द्वारा बहुमूल्य प्रतिफल के एवज में तारीख 17 फरवरी, 1938 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा क्रय किए जाने का दावा किया था । विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यर्थी-वादी यह सिद्ध करने के लिए कोई किराया करार, किराया रसीद या कोई अन्य मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं हो सका कि अपीलार्थी उक्त परिसरों का किराएदार था । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी-वादी उक्त वाद में कोई अनुतोष

प्राप्त करने का हकदार नहीं है । प्रत्यर्थी-वादी ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित तारीख 22 जनवरी, 1988 के उक्त निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर, अधीनस्थ न्यायालय कुंभकोनम, जिसे इसमें इसके पश्चात् 'प्रथम अपील न्यायालय' कहा गया है, के समक्ष अपील फाइल की । प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 17 सितम्बर, 1999 के निर्णय और आदेश द्वारा उक्त अपील को मंजूर कर लिया और विचारण न्यायालय द्वारा पारित तारीख 22 जनवरी, 1998 के उक्त निर्णय और आदेश को यह अभिनिर्धारित करते हुए अपास्त कर दिया कि प्रत्यर्थी-वादी वाद परिसरों के आधे भाग पर घोषणा कराने का हकदार है और वह प्रत्यर्थी-वादी द्वारा धारित उक्त परिसरों के आधे भाग से हुई आय, यदि कोई हो, और/या उसके उपयोग, अधिभोग और/या उपभोग के लिए प्रभारों की वसूली का भी हकदार है किन्तु, वह कब्जे की बरामदगी का हकदार नहीं है । प्रथम अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमति व्यक्त की कि प्रत्यर्थी-वादी यह सिद्ध करने में असफल रहा है कि उक्त परिसरों को अपीलार्थी-प्रतिवादी के पिता एम. अब्दुल अजीज को किराए पर दिया गया था । दूसरी ओर, अपीलार्थी लंबे समय से उक्त परिसरों के कब्जे में है और उसका उपभोग कर रहा है । इस प्रकार, प्रथम अपील न्यायालय ने वाद संपत्ति के उस भाग के संबंध में, जिसका प्रत्यर्थी-वादी स्वामी था, 'पिछली आय' का संदाय करने के लिए अपीलार्थी को दायी पाया । अपीलार्थी-प्रतिवादी ने विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को उलटने, उक्त वाद को खारिज करने से व्यथित होकर प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष 2000 की द्वितीय अपील सं. 64 के अधीन द्वितीय अपील फाइल की । प्रत्यर्थी-वादी ने भी तारीख 17 सितम्बर, 1999 के उसी निर्णय और डिक्री के विरुद्ध जो वाद परिसरों में से उसके आधे भाग के संबंध में कब्जे की बरामदगी के अनुतोष प्रदान करने से प्रत्यर्थी-वादी को इनकार करने की सीमा तक था, मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष 2000 की द्वितीय अपील सं. 558 फाइल की । उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश द्वारा इस न्यायालय के समक्ष अपील के अधीन अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा फाइल 2000 की द्वितीय अपील सं. 64 को खारिज कर दिया गया । प्रत्यर्थी-वादी द्वारा फाइल 2000 की द्वितीय अपील सं. 559 को मंजूर कर लिया गया और प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय

और आदेश को उस सीमा तक अपास्त कर दिया गया जिस सीमा तक प्रत्यर्थी-वादी को उक्त परिसरों में से आधे भाग के संबंध में कब्जे की बरामदगी का अनुतोष देने से इनकार कर दिया गया था । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी-वादी, डिक्री के निष्पादन के समय पर एक अधिवक्ता आयुक्त की सहायता से उसे शनाख्त करने के पश्चात् वादपत्र में अनुसूचित संपत्ति के आधे भाग की बरामदगी का हकदार है । अन्य सभी के संबंध में, प्रथम अपील न्यायालय के डिक्री की पुष्टि कर दी गई थी । परिवादी-अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा फाइल अभिवचनों से, यह प्रत्यक्षत: स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी-प्रतिवादी ने 75 वर्ष पूर्व निष्पादित हस्तांतरण विलेख के आधार पर वाद संपत्ति के स्वामित्व के अधिकार का दावा किया है । अपीलार्थी-प्रतिवादी ने अपने पिता द्वारा निष्पादित निर्मोचन विलेख के आधार पर वर्ष 1966 से निरंतर कब्जे मे रहने का दावा किया है । दूसरे शब्दों में, अपीलार्थी-प्रतिवादी ने वाद संस्थित किए जाने के लगभग 28 वर्षों के पूर्व से स्वामी के रूप में वाद परिसरों के कब्जे में होने का दावा किया है । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, जहां अपीलार्थी-प्रतिवादी वाद संपत्ति के मात्र एक भाग का स्वामी था, किन्तु स्वीकृतत: वह संपूर्ण वाद संपत्ति पर काबिज रहा है और अपीलार्थी-प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में स्वामी के रूप में वर्षों से निरंतर काबिज रहने का दावा किया है, अपीलार्थी की अपने लिखित कथन में प्रतिरक्षा प्रभावी और सारत: प्रतिकूल कब्जे के रूप में थी, यद्यपि प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वामित्व का विस्तारपूर्वक अभिवचन नहीं किया गया था । तथापि, इस न्यायालय के लिए इस प्रश्न की परीक्षा करना आवश्यक नहीं है कि क्या अपीलार्थी-प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जे द्वारा हक का दावा करने का हकदार था या नहीं । कब्जे की डिक्री का दावा करने वाले व्यक्ति को ऐसा कब्जा प्राप्त करने के लिए अपने हक को सिद्ध करना होता है और यह भी सिद्ध करना होता है कि उसका दावा परिसीमा विधियों द्वारा वर्जित नहीं है । उसे यह अवश्य ही

दर्शित करना चाहिए कि वह अभिकथित अतिचारी द्वारा कब्जा प्राप्त करने के पूर्व कब्जे में था । वादपत्र में ऐसी किसी बात के अभाव में कि किस तारीख को अपीलार्थी-प्रतिवादी और/या उसके हित-पूर्वाधिकारी ने वाद संपत्ति को कब्जे में लिया था और यह दर्शित करने के लिए किसी ऐसी बात के अभाव में कि कब्जे के लिए डिक्री का अनुतोष परिसीमा अवधि के भीतर था, उच्च न्यायालय, प्रथम अपील न्यायालय के निष्कर्ष को उलट नहीं सकता था और प्रत्यर्थी-वादी के कब्जे की बरामदगी के अनुतोष को मंजूर नहीं कर सकता था तब जब कि अपीलार्थी-प्रतिवादी ने यह अभिवाक् किया था कि वह वर्ष 1966 से पूर्ण अधिकारों सहित स्वामी के रूप में वाद परिसरों पर पूर्णत: काबिज रहा है तब से जब उसके पिता ने उसके पक्ष में निर्मोचन विलेख निष्पादित किया था और/या दूसरे शब्दों में, वाद संस्थित किए जाने की तारीख तक लगभग 28 वर्ष पूर्व से वह वाद परिसरों पर काबिज रहा है ।

द्वितीय अपील को ग्रहण करने और विनिश्चित करने के लिए पूर्ववर्ती शर्त विधि का सारवान् प्रश्न मौजूद होना है और जब कभी उच्च न्यायालय द्वारा प्रश्न विरचित किया जाता है तो उच्च न्यायालय को यह दर्शित करना होता है कि प्रश्न, विधि का प्रश्न है और न कि तथ्यों का प्रश्न है, यह भी दर्शित करना होता है कि प्रश्न, एक सारवान् विधि का प्रश्न है । जब कोई विधि का सारवान् प्रश्न विरचित नहीं किया जाता है किन्तु, द्वितीय अपील, उच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चित कर दिया जाता है तो उच्च न्यायालय का निर्णय विधि में दूषित हो जाता है । विधि का सारवान् प्रश्न, विरचित करना आज्ञापक है और द्वितीय अपील के ज्ञापन में उल्लिखित आधार के प्रति मात्र निर्देश, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के आज्ञापक का समाधान नहीं कर सकता है । द्वितीय अपील के अधीन उच्च न्यायालय का निर्णय और आदेश में मामले में अंतर्वलित किसी विधि के प्रश्न पर चर्चा या विनिश्चय नहीं किया गया है, इसलिए सारवान् विधि का प्रश्न अंतर्वलित होना नहीं कहा जा सकता है । (पैरा 49, 50, 51, 55 57, 59 और 60)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 152 : **विश्वनाथ घोष** बनाम **गोविंद घोष** ;	59
[2006]	(2006) 5 एस. सी. सी. 545 : **हीरो विनोत** बनाम **सेशम्मल** ;	30, 31
[2001]	(2001) 3 एस. सी. सी. 179 : **संतोष हजारी** बनाम **पुरुषोत्तम तिवारी** ;	35
[1999]	(1999) 3 एस. सी. सी. 722 : **कोन्डिबा दगदू कदम** बनाम **सावित्री बाई सोपान गुजर** ;	58
[1997]	ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 1047 : **पंचगोपाल बरूआ** बनाम **विनेश चंद्र गोस्वामी** ;	34
[1963]	ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 302 : **रामचंद्र** बनाम **रामालिंगम** ;	36
[1962]	ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 1314 : **सर चुन्नी लाल वी. मेहता एंड सन्स लि.** बनाम **सेंचुरी स्पाइस एंड मैन्यूफैक्चरिंग कंपनी लि.** ;	29, 30
[1939]	ए. आई. आर. 1939 पी. सी. 201 : **बाबा करतार सिंह** बनाम **दयाल दास** ;	48
[1907]	(1907) पी. सी. 73 : **पेरी** बनाम **क्रिशहोल्ड** ।	56

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की सिविल अपील सं. 2843-2844.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 133 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री के. के. मणि और (श्रीमती) टी. अर्चना, अधिवक्तागण

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री थनंजयन, अधिवक्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (सुश्री) इंदिरा बनर्जी ने दिया ।

न्या. (सुश्री) बनर्जी – ये अपीलें, अपीलार्थी द्वारा फाइल 2000 की एस.ए. (एमडी) सं. 64 के अधीन द्वितीय अपील खारिज करते हुए किन्तु प्रत्यर्थी द्वारा फाइल 2000 की एस.ए. (एमडी) सं. 558 के अधीन द्वितीय अपील मंजूर करते हुए और 1998 के ए.एस. सं. 16 में प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित तारीख 17 सितम्बर, 1999 के निर्णय और डिक्री को उस सीमा तक अपास्त करते हुए जिस सीमा तक प्रथम अपील न्यायालय ने वाद परिसरों के कब्जे की बरामदगी की डिक्री के लिए प्रत्यर्थी के दावे को अस्वीकार कर दिया था, तारीख 6 नवम्बर, 2008 को पारित सामान्य निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि प्रत्यर्थी, वाद में वादी होने के नाते वाद परिसरों के आधे भाग के संबंध में हक की घोषणा कराने और वाद परिसरों के उक्त आधे भाग के कब्जे की बरामदगी और प्रत्यर्थी द्वारा धारित वाद संपत्ति के उक्त आधे भाग से हुई आय की वसूली और/या उसके उपयोग, उपभोग और/या अधिभोग के लिए प्रभारों की वसूली का भी हकदार था ।

2. अपीलार्थी ने मेला सेनिया स्ट्रीट, अदुथुरई, तमिलनाडु में आर. एस. सं. 120/13 में डोर सं. 4 में भवन और परिसरों के निमित्त वाद परिसरों का स्वामी होने का दावा किया है ।

3. अपीलार्थी के अनुसार, अपीलार्थी के पिता ने तारीख 17 फरवरी, 1938 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा मूल्यवान प्रतिफल के एवज में वाद परिसरों को क्रय किया था । अपीलार्थी ने प्रारंभ से ही स्वामी के रूप में और न कि किराएदार के रूप में वाद परिसरों पर काबिज होने का दावा किया है ।

4. वर्ष 1994 में प्रत्यर्थी, जिसे इसमें इसके पश्चात् 'प्रत्यर्थी-वादी' कहा गया है, ने वाद परिसरों के स्वामित्व की घोषणा करने, अपीलार्थी को प्रतिवादी होने के नाते वाद परिसरों का कब्जा प्रत्यर्थी-वादी को देने का निदेश देने, वाद परिसरों के संबंध में किराया बकायों/अधिभोग प्रभारों के संबंध में रु. 900/- का संदाय करने की डिक्री और भावी लाभों का संदाय के लिए डिक्री पारित करने का दावा करते हुए, जिला मुंसिफ,

वलैंगैमन, कुंभकोनम के न्यायालय में 1994 के मूल वाद सं. 169 के अधीन वाद फाइल किया था ।

5. उक्त वाद में फाइल वादपत्र में यह अभिकथित किया गया था कि उक्त परिसरों को, जिन्हें प्रत्यर्थी-वादी के पिता ने तारीख 17 सितम्बर, 1940 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा क्रय किया था, मूल रूप से अपीलार्थी के पिता एम. अब्दुल अजीज को किराए पर दिया गया था । एम. अब्दुल अजीज की मृत्यु के पश्चात्, किराएदारी अपीलार्थी के नाम में मुख्तारनामा कर दी गई थी जो रु. 25/- प्रतिमाह किराया देने और अपेक्षित पंचायत कर का संदाय करने के लिए भी सहमत हुआ था ।

6. प्रत्यर्थी-वादी ने यह अभिकथन करते हुए कि अपीलार्थी ने तहसीलदार, नाथम के पास 'पट्टा' के लिए आवेदन करते हुए उक्त परिसरों के संबंध में हक पाने की कोशिश कर रही है और यह भी अभिकथन करते हुए कि अपीलार्थी से फरवरी, 1994 तक रु. 1225/- किराए बकाया है, पूर्वोक्त वाद फाइल किया था ।

7. वाद में, प्रत्यर्थी-वादी ने अन्य बातों के साथ किराया और/या अधिभोग प्रभारों के संबंध में रु. 900/- की डिक्री करने का दावा किया । प्रत्यर्थी-वादी ने अपने दावे को 3 वर्षों के बकाया किरायों और/या अधिभोग प्रभारों तक निर्बंधित किया क्योंकि पूर्ववर्ती अवधियों के लिए किराया और/या अधिभोग प्रभार अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा दायित्व की कोई अभिस्वीकृति नहीं करने के कारण परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित हो गए थे ।

8. अपीलार्थी-प्रतिवादी ने वाद में अपना लिखित कथन फाइल किया, जिसमें उसने वाद परिसरों में प्रत्यर्थी-वादी के हक और/या स्वामित्व से इनकार किया और यह भी दलील दी कि अपीलार्थी-प्रतिवादी किराएदार नहीं था । अपीलार्थी-प्रतिवादी ने उन परिसरों के पूर्ण स्वामित्व का दावा किया जिन्हें उसने अपने पिता द्वारा बहुमूल्य प्रतिफल के एवज में तारीख 17 फरवरी, 1938 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा क्रय किए जाने का दावा किया था ।

9. अपीलार्थी-प्रतिवादी ने यह भी दलील दी कि वाद परिसरों का सभी चीजों के साथ अपीलार्थी-प्रतिवादी के पिता अब्दुल अजीज के नाम में कर निर्धारित किया गया था और न कि प्रत्यर्थी-वादी या उसके पिता के नाम में निर्धारित किया गया था । अपीलार्थी-प्रतिवादी ने तारीख 14 मार्च, 1966 के रजिस्ट्रीकृत निर्मोचन के विलेख के अधीन अपने पिता से वाद परिसरों को प्राप्त होने का दावा किया । अपीलार्थी-प्रतिवादी के अनुसार, वह वर्ष 1966 से संपूर्ण अधिकारों के साथ वाद परिसरों को धारित और उपभोग कर रहा है ।

10. विद्वान् जिला मुंसिफ (विचारण न्यायालय) ने उक्त वाद में न्याय-निर्णयन के लिए निम्नलिखित तीन विवाद्यकों को विरचित किया :-

(i) क्या प्रत्यर्थी-वादी, प्रतिवादी (इस अपील में अपीलार्थी) से वाद संपत्ति में हक की घोषणा करने और वाद संपत्ति के कब्जे की बरामदगी पाने का हकदार है ?

(ii) क्या प्रतिवादी (इसमें अपीलार्थी) वाद संपत्ति का किराएदार है या नहीं ?

(iii) क्या प्रत्यर्थी-वादी अन्य अनुतोषों को पाने का हकदार है ?

11. विचारण न्यायालय ने तारीख 22 जनवरी, 1998 के निर्णय और डिक्री द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए वाद खारिज कर दिया कि प्रत्यर्थी-वादी यह साबित करने में असफल रहा है कि वाद संपत्ति उसके पिता द्वारा क्रय की गई थी । सभी तीनों विवाद्यक प्रत्यर्थी-वादी के विरुद्ध विनिश्चित किए गए ।

12. विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यर्थी-वादी यह सिद्ध करने के लिए कोई किराया करार, किराया रसीद या कोई अन्य मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं हो सका कि अपीलार्थी उक्त परिसरों का किराएदार था । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी-वादी उक्त वाद में कोई अनुतोष प्राप्त करने का हकदार नहीं है ।

13. प्रत्यर्थी-वादी ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित तारीख 22 जनवरी, 1988 के उक्त निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर, अधीनस्थ न्यायालय कुंभकोनम, जिसे इसमें इसके पश्चात् 'प्रथम अपील न्यायालय' कहा गया है, के समक्ष अपील फाइल की ।

14. प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 17 सितम्बर, 1999 के निर्णय और आदेश द्वारा उक्त अपील को मंजूर कर लिया और विचारण न्यायालय द्वारा पारित तारीख 22 जनवरी, 1998 के उक्त निर्णय और आदेश को यह अभिनिर्धारित करते हुए अपास्त कर दिया कि प्रत्यर्थी-वादी वाद परिसरों के आधे भाग पर घोषणा कराने का हकदार है और वह प्रत्यर्थी-वादी द्वारा धारित उक्त परिसरों के आधे भाग से हुई आय, यदि कोई हो, और/या उसके उपयोग, अधिभोग और/या उपभोग के लिए प्रभारों की वसूली का भी हकदार है किन्तु, वह कब्जे की बरामदगी का हकदार नहीं है ।

15. वाद में प्रत्यर्थी वादी का दावा इस प्राख्यान पर आधारित था कि राजगोपाला पट्टर जिन्होंने न्यायालय नीलामी में उक्त परिसरों को क्रय किया था, ने वर्ष 1940 में उक्त परिसरों को प्रत्यर्थी-वादी के पिता को विक्रय कर दिया था ।

16. प्रथम अपील न्यायालय ने पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत मौखिक साक्ष्यों का विश्लेषण किया और अभिलेख पर के दस्तावेजी साक्ष्यों जिनमें विशिष्टतया रजिस्ट्रीकृत हस्तांतरण विलेख सम्मिलित था जिसके द्वारा प्रत्यर्थी-वादी के पिता ने राजगोपाला पट्टर से उक्त परिसरों के उसके भाग को क्रय किया था (प्रदर्श पी-1), रजिस्ट्रीकृत दस्तावेजों जिसके द्वारा राजगोपाला पट्टर ने न्यायालय नीलामी में उक्त परिसरों को अर्जित किया था (प्रदर्श पी-2 और पी-3) और तारीख 17 फरवरी, 1938 को निष्पादित रजिस्ट्रीकृत हस्तांतरण विलेख, प्रदर्श डी-1 जिसके द्वारा अपीलार्थी प्रतिवादी के पिता एम. अब्दुल अजीज ने वाद परिसरों में से अपने भाग को क्रय किया था, की संवीक्षा और परीक्षा की । अपीलार्थी-प्रतिवादी के पिता और प्रत्यर्थी-वादी के पिता और/या उनके हित पूर्वाधिकारियों के क्रमश: विक्रेताओं के अधिकारों की सीमा तक की भी परीक्षा की और यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी-प्रतिवादी के पिता

ने वाद परिसरों में से मात्र एक भाग को क्रय किया था न कि संपूर्ण परिसरों को क्रय किया था और अन्य भाग को प्रत्यर्थी-वादी के पिता द्वारा क्रय किया गया था । इसलिए, प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी-वादी, अपने पिता द्वारा क्रय किए गए वाद परिसरों में से उक्त भाग के संबंध में घोषणा कराने का हकदार है ।

17. प्रथम अपील न्यायालय ने इस तथ्य को भी उल्लिखित किया कि अपीलार्थी-प्रतिवादी का कुटुम्ब वर्ष 1940 से वाद संपत्ति में रह रहा था और यह कि प्रत्यर्थी-वादी ने यह दर्शित करने के लिए उक्त परिसरों के संबंध में कोई किराया करार या रसीद या कोई कर प्राप्तियां प्रस्तुत नहीं की हैं कि प्रत्यर्थी-वादी या उसका पिता या कोई अन्य कुटुम्ब सदस्य ने उक्त परिसरों के संबंध में कभी-भी कोई कर संदत्त किया था ।

18. प्रथम अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमति व्यक्त की कि प्रत्यर्थी-वादी यह सिद्ध करने में असफल रहा है कि उक्त परिसरों को अपीलार्थी-प्रतिवादी के पिता एम. अब्दुल अजीज को किराए पर दिया गया था । दूसरी ओर, अपीलार्थी लंबे समय से उक्त परिसरों के कब्जे में है और उसका उपभोग कर रहा है । इस प्रकार, प्रथम अपील न्यायालय ने वाद संपत्ति के उस भाग के संबंध में, जिसका प्रत्यर्थी-वादी स्वामी था, 'पिछली आय' का संदाय करने के लिए अपीलार्थी को दायी पाया ।

19. वस्तुतः, प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी उस आय को, यदि कोई हो, जो वाद परिसरों के उक्त भाग से प्राप्त हुई है जिसका प्रत्यर्थी-वादी स्वामी था, प्रत्यर्थी-वादी को संदाय करने के लिए अपीलार्थी दायी है और/या प्रत्यर्थी-वादी द्वारा धारित वाद परिसरों के उस भाग के उपयोग, अधिभोग और उपभोग के लिए प्रभारों का संदाय करने के लिए भी दायी है ।

20. तथापि, प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी-वादी कब्जे की बरामदगी का हकदार नहीं है क्योंकि प्रत्यर्थी-वादी ने प्रत्यर्थी-वादी और अपीलार्थी-प्रतिवादी के बीच मकान-मालिक-

किराएदार के संबंध को सिद्ध करने में असफल रहा है और यह कि किसी भी दशा में, अपीलार्थी लंबे समय से वाद परिसरों के कब्जे में रहा है ।

21. प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए ऋजु और ठीक आदेश पारित किया कि प्रत्यर्थी-वादी, उक्त परिसरों के एक भाग का स्वामी होने के नाते उसके द्वारा धारित वाद संपत्ति के उक्त भाग के संबंध में हक की घोषणा कराने का हकदार है किन्तु, कब्जे की बरामदगी का हकदार नहीं है क्योंकि प्रतिवादी जो इस अपील में अपीलार्थी है, लंबे समय से उक्त संपत्ति का उपभोग कर रहा है । प्रभावी और सारतः, प्रथम अपील न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि कब्जे की बरामदगी का अनुतोष विलंब के कारण वर्जित है और/या दूसरे शब्दों में परिसीमा की विधि द्वारा वर्जित है, यद्यपि, इसे प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय और आदेश में स्पष्टतः कथित नहीं किया गया है ।

22. अपीलार्थी-प्रतिवादी ने विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को उलटने, उक्त वाद को खारिज करने से व्यथित होकर प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष 2000 की द्वितीय अपील सं. 64 के अधीन द्वितीय अपील फाइल की । प्रत्यर्थी-वादी ने भी तारीख 17 सितम्बर, 1999 के उसी निर्णय और डिक्री के विरुद्ध जो वाद परिसरों में से उसके आधे भाग के संबंध में कब्जे की बरामदगी के अनुतोष प्रदान करने से प्रत्यर्थी-वादी को इनकार करने की सीमा तक था, मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष 2000 की द्वितीय अपील सं. 558 फाइल की ।

23. उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश द्वारा इस न्यायालय के समक्ष अपील के अधीन अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा फाइल 2000 की द्वितीय अपील सं. 64 को खारिज कर दिया गया । प्रत्यर्थी-वादी द्वारा फाइल 2000 की द्वितीय अपील सं. 559 को मंजूर कर लिया गया और प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय और आदेश को उस सीमा तक अपास्त कर दिया गया जिस सीमा तक प्रत्यर्थी-वादी को उक्त परिसरों में से आधे भाग के संबंध में कब्जे की बरामदगी का अनुतोष देने से इनकार कर दिया गया था । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी-वादी, डिक्री के निष्पादन के समय पर एक अधिवक्ता

आयुक्त की सहायता से उसे शनाख्त करने के पश्चात् वादपत्र में अनुसूचित संपत्ति के आधे भाग की बरामदगी का हकदार है । अन्य सभी के संबंध में, प्रथम अपील न्यायालय के डिक्री की पुष्टि कर दी गई थी ।

24. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (सी. पी. सी.) की धारा 100 जो द्वितीय अपील के लिए उपबंध करती है, जैसी कि यह सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1976 का 104 द्वारा संशोधित की गई है और जो तारीख 1 फरवरी, 1977 से प्रभावी हुआ, निम्नलिखित उपबंध करता है :-

> "**100. द्वितीय अपील** - (1) उसके सिवाय जैसा इस संहिता के पाठ में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अभिव्यक्त रूप से उपबंधित है, उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय द्वारा अपील में पारित प्रत्येक डिक्री की उच्च न्यायालय में अपील हो सकेगी, यदि उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि उस मामले में विधि का कोई सारवान् प्रश्न अंतर्वलित है ।
>
> (2) एकपक्षीय पारित अपीली डिक्री की अपील इस धारा के अधीन हो सकेगी ।
>
> (3) इस धारा के अधीन अपील में अंतर्वलित विधि के उस सारवान् प्रश्न का अपील के ज्ञापन में प्रमिततः कथन किया जाएगा ।
>
> (4) जहां उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि किसी मामले में सारवान् विधि का प्रश्न अंतर्वलित है तो वह उस प्रश्न को बनाएगा ।
>
> (5) अपील इस प्रकार बनाए गए प्रश्न पर सुनी जाएगी और प्रतिवादी की अपील की सुनवाई में यह तर्क करने की अनुज्ञा दी जाएगी कि ऐसे मामले में ऐसा प्रश्न अंतर्वलित नहीं है :
>
> परंतु इस धारा की किसी बात के बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि वह, विधि के किसी अन्य ऐसे सारवान् प्रश्न पर जो

न्यायालय के द्वारा नहीं बनाया गया है, न्यायालय का यह समाधान हो जाने पर कि उस मामले में ऐसा प्रश्न अंतर्वलित है, न्यायालय की कारणों को लेखबद्ध करके अपील सुनने की शक्ति वापस लेती है या उसे न्यून करती है ।"

25. द्वितीय अपील या उस मामले के लिए, कोई अपील अधिकार की विषयवस्तु नहीं है । अपील का अधिकार संविधि द्वारा प्रदत्त है । द्वितीय अपील मात्र विधि के सारवान् प्रश्न पर ही की जा सकती है । यदि संविधि अपील करने का सीमित अधिकार प्रदत्त करती है तो न्यायालय अपील के क्षेत्र को विस्तारित नहीं कर सकते हैं । प्रत्यर्थी-वादी इस बात के लिए स्वतंत्र नहीं था कि वह द्वितीय अपील में साक्षियों का पुन: विश्लेषण या पुन: विवेचन करने के लिए उच्च न्यायालय को तथ्यों पर पुन: विचार करने या तथ्यों को मंगाने के लिए कह सके ।

26. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100, यथा संशोधित, द्वितीय अपील के अधिकार को मात्र उन मामलों तक सीमित करती है जहां विधि के सारवान् प्रश्न अंतर्वलित होते हैं । 'विधि के सारवान् प्रश्न' की मौजूदगी, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए अनिवार्य है ।

27. उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित विधि के प्रश्नों को विरचित किया था :-

"1. क्या निचला अपील न्यायालय, कब्जे के अनुतोष को इनकार करने में सही है, विनिर्दिष्टतया, तब जब निचले अपील न्यायालय ने कब्जा प्रदान करने तक अंत:कालीन लाभों को मंजूर किया था ?

2. क्या निचला अपील न्यायालय, यह अभिनिर्धारित करने में सही है कि वादी वर्तमान मामले में अभिवचनों और हक के दस्तावेजों के अनदेखी करते हुए, वाद संपत्ति के आधे भाग के संबंध में घोषणा कराने का हकदार है ?"

28. अपीलार्थी-प्रतिवादी की ओर से जोरदार रूप से और हमारे मत में पर्याप्त बल के साथ यह दलील दी गई कि दोनों द्वितीय अपीलों में

से किसी में भी विधि का कोई प्रश्न अंतर्वलित नहीं था, विधि का सारवान् प्रश्न होने की बात तो दूर जिससे कि 2000 की द्वितीय अपील सं. 64 में उच्च न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षित था ।

29. यह विनिश्चय करने के सिद्धांतों जब कोई विधि का प्रश्न, विधि का सारवान् प्रश्न हो जाता है, को इस न्यायालय के सांविधानिक न्यायपीठ द्वारा **सर चुन्नी लाल वी. मेहता एंड सन्स लि.** बनाम **सेंचुरी स्पाइस एंड मैन्यूफैक्चरिंग कंपनी लि**[1]**.** वाले मामले में, प्रगणित किया गया है जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि :–

> "यह अवधारण करने के लिए कि क्या मामले में उद्भूत विधि का प्रश्न सारवान् है, हमारी राय में, समुचित परीक्षण यह होगा कि क्या यह साधारण लोक महत्व का है या क्या यह प्रत्यक्षत: और सारत: पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित करता है और यदि ऐसा है तो क्या यह इस भाव में प्रश्न खुला रहता है कि यह इस न्यायालय या प्रिवी कौंसिल या फेडरल न्यायालय द्वारा अंतिम तौर पर सुस्थिर नहीं है या यह वैकल्पिक मतों की चर्चा कराने से या कठिनाई से स्वतंत्र नहीं है । यदि प्रश्न, उच्चतर न्यायालय द्वारा सुस्थिर है या प्रश्न को अवधारित करने में साधारण सिद्धांतों को लागू किया जाना सुस्थित है और मात्र उन सिद्धांतों को लागू करने का प्रश्न है या यह अभिवाक् उद्भूत किया गया है कि सुस्पष्टत: तर्क का प्रश्न, सारवान् विधि का प्रश्न नहीं हो सकता है ।"

30. इस न्यायालय ने **हीरो विनोत** बनाम **सेशम्मल**[2] वाले मामले को निर्दिष्ट किया और **चुन्नी लाल** बनाम **मेहता एंड सन्स** (उपर्युक्त) वाले मामले और अन्य निर्णयों का अवलंब लिया और यह निष्कर्ष निकालने के लिए परीक्षणों की संवीक्षा किया कि क्या दिए गए विधि के प्रश्नों के समूह, मात्र विधि के प्रश्न है या विधि के सारवान् प्रश्न है ।

31. **हीरो विनोत** (उपर्युक्त) वाले मामले में, इस न्यायालय के निर्णय के सुसंगत पैराओं को निम्नलिखित उल्लिखित किया जाता है :–

---

[1] ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 1314.

[2] (2006) 5 एस. सी. सी. 545.

"21. वाक्य "विधि का सारवान् प्रश्न" जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की संशोधित धारा 100 में समाविष्ट है, संहिता में परिभाषित नहीं है । शब्द 'सारवान्' अर्हता के रूप में 'विधि का प्रश्न', का अभिप्राय सार, आवश्यक, वास्तविक, ठीक भाव में, महत्वपूर्ण या विचारणीय होने से है । यह समझा जा सकता है कि तकनीक में, कोई सार या परिणाम नहीं, या मात्र शैक्षणिक होने के साथ कुछ विरोधाभास है । तथापि, यह स्पष्ट है कि विधान-मंडल ने शब्द 'साधारण महतव का' के स्थान पर 'विधि का सारवान् प्रश्न' के क्षेत्र को अर्हता के रूप में नहीं चुना है क्योंकि ऐसा कई अन्य उपबंधों में किया गया है जैसा कि संहिता की धारा 109 या संविधान के अनुच्छेद 133(1)(क) में दिया गया है । विधि का सारवान् प्रश्न जिस पर द्वितीय अपील की सुनवाई की जाएगी, को साधारण महत्व के विधि का सारवान् प्रश्न आवश्यक रूप से होने की आवश्यकता नहीं है । गुरन दित्ता **बनाम** राम दित्ता [(1927-28) 515 आई. ए. 235 = ए. आई. आर. 1928 पी. सी. 172] वाले मामले में, वाक्य 'विधि का सारवान् प्रश्न' जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 में तत्कालीन मौजूद अंतिम खंड में नियोजित था (चूंकि जिसे संशोधन अधिनियम, 1973 द्वारा लोप कर दिया गया) विचार के लिए आया था और माननीय न्यायाधीशों से यह अभिनिर्धारित किया था कि इसका अभिप्राय साधारण महत्व के सारवान् प्रश्न से नहीं है अपितु, विधि का सारवान् प्रश्न वह है जो मामले में अंतर्वलित होता है । **सर चुन्नी लाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में, सांविधानिक न्यायपीठ ने रिमल्लापुड्डी सुब्बा राव **बनाम** नुनी वीराजू [(ए. आई. आर. 1951 मद्रास 969 = (1951) 2 एम. एल. जे. 222 (एफ. बी.)] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ द्वारा अपनाए गए मत का अनुसरण करते हुए, सहमति व्यक्त की है ।

जब विधि का प्रश्न ऋजुत: तर्क योग्य होता है तो वहां इस पर भिन्न राय व्यक्त करने की गुंजाइश होती है या जहां न्यायालय यह विचार करने के लिए आवश्यक समझता है कि प्रश्न कुछ सीमा

तक विचार करने योग्य है और वैकल्पिक मतों पर चर्चा करता है, तब प्रश्न विधि का सारवान् प्रश्न हो जाता है । दूसरी ओर, यदि प्रश्न, व्यवहारिक तौर पर उच्चतर न्यायालय के विनिश्चय के अंतर्गत होता है या यदि उस प्रश्न को अवधारित करने में ऐसे साधारण सिद्धांतों को लागू किया जाता है जो सुस्थिर हैं और मामले के विशिष्ट तथ्यों में उन सिद्धांतों को लागू करने का मात्र प्रश्न होता है तो यह विधि का सारवान् प्रश्न नहीं होगा ।"

32. विधि का प्रश्न 'सारवान्' होना वाद-विवाद योग्य है क्योंकि पूर्ववर्ती में भूमि विधि या किसी आबद्धकारी पूर्व-निर्णय द्वारा सुस्थिर नहीं है और यह उसके समक्ष उपस्थित सामग्रियों के आधार पर मामले का विनिश्चय और/या पक्षकारों के अधिकारों का विनिश्चय होना चाहिए, यदि अन्यथा उत्तर नहीं दिया जाता है ।

33. 'मामले में अंतर्वलित' विधि का प्रश्न होना, प्रथमत: इसे अभिवचनों में अधिकथित किया जाना चाहिए और ऐसे प्रश्न, तथ्य के न्यायालयों द्वारा निकाले गए सारवान् तथ्य के निष्कर्षों से निकलना चाहिए और यह आवश्यक रूप से विनिश्चय किया जाना चाहिए कि विधि का प्रश्न मामले का विनिश्चय करने के लिए ठीक और समुचित है ।

34. जहां ऐसा कोई विधि का प्रश्न नहीं है न ही विचारण न्यायालय या प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष मिश्रित विधि और तथ्य के प्रश्न के बारे में तर्क दिया गया है वहां ऐसे मामलों में, द्वितीय अपील ग्रहण नहीं की जा सकती है जैसा कि इस न्यायालय ने **पंचगोपाल बरूआ** बनाम **विनेश चंद्र गोस्वामी**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया है ।

35. क्या विधि का प्रश्न 'सारवान्' है और क्या ऐसा प्रश्न मामले में अंतर्वलित है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है । संपूर्ण विचार का मापदंड सभी प्रक्रमों पर न्याय करने के लिए अनिवार्य आबद्धता और किसी लंबित मुकदमें को लंबा खींचने से बचने की आवश्यकता की आबद्धता के बीच न्यायिक संतुलित

---

[1] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 1047.

बनाने की आवश्यकता होती है । इस प्रतिपादना का **संतोष हजारी** बनाम **पुरुषोत्तम तिवारी**[1] वाले मामले से समर्थन मिलता है ।

36. द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय की अधिकारिता विधि के सारवान् प्रश्न तक सीमित होने के नाते, तथ्य के प्रश्न, द्वितीय अपील में चुनौती देने के लिए खुले नहीं होते हैं, भले ही साक्ष्य का मूल्यांकन सुस्पष्टत: त्रुटिपूर्ण हों और तथ्य के निष्कर्ष गलत हों, जैसा कि **रामचंद्र** बनाम **रामालिंगम**[2] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है । उच्च न्यायालय के समक्ष प्रथम बार में उठाया गया संपूर्णत: नया मुद्दा मामले में अंतर्वलित प्रश्न नहीं हो सकता है जब तक कि यह मामले की तह तक नहीं जाता हो ।

37. इस मामले के लिए सुसंगत, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 से संबंधित सिद्धांतों को संक्षिप्तत: इस प्रकार उल्लिखित किया जा सकता है :-

(i) दस्तावेज के विवरणों या अंतर्वस्तुओं से तथ्य के निष्कर्ष, तथ्य के प्रश्न होते हैं किन्तु दस्तावेज के निबंधनों का विधिक प्रभाव, विधि का प्रश्न होता है । दस्तावेज का विनिर्माण जिसमें विधि के किसी सिद्धांत का लागू होना अंतर्वलित होता है, भी विधि का प्रश्न होता है । इसलिए, जब दस्तावेज का गलत अर्थान्वयन किया जाता है या दस्तावेज के निर्वचन में विधि के सिद्धांत को गलत रूप से लागू किया जाता है तो इससे विधि का प्रश्न उद्भूत होता है ।

(ii) उच्च न्यायालय का यह समाधान होना चाहिए कि मामले में विधि का सारवान् प्रश्न अंतर्वलित होना चाहिए और न कि मात्र विधि का प्रश्न । विधि का प्रश्न, मामले के विनिश्चय के लिए तात्विक होने के नाते (अर्थात् प्रश्न, जिसका उत्तर वाद के पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित करता है) विधि का सारवान् प्रश्न होगा, यदि, यह किसी विनिर्दिष्ट विधि के उपबंधों अथवा आबद्धकारी पूर्व-

---

[1] (2001) 3 एस. सी. सी. 179.

[2] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 302.

निर्णय से उद्भूत होने वाले सुस्थिर सिद्धांतों के अंतर्गत नहीं आता है और इसमें वाद-विवाद योग्य विधिक विवाद्यक अंतर्वलित होता है ।

(iii) विधि का सारवान् प्रश्न प्रतिकूल परिस्थिति में भी उद्भूत होगा, जहां विधिक स्थिति स्पष्ट है, या तो विधि के अभिव्यक्त उपबंधों के कारण या आबद्धकारी पूर्व-निर्णयों के कारण, किन्तु, निचले न्यायालय ने या तो इनकी अवहेलना करते हुए, या ऐसे विधिक सिद्धांतों के प्रतिकूल कार्य करते हुए मामले का विनिश्चय किया है । द्वितीय प्रकार के मामलों में, विधि का सारवान् प्रश्न विधि के कारण उद्भूत नहीं होते हैं जो वाद-विवाद योग्य होते हैं, अपितु यह तात्विक प्रश्न पर दिए गए विनिश्चय, विधि की सुस्थिर प्रतिपादना के अतिक्रमण के कारण उद्भूत होते हैं ।

(iv) साधारण नियम यह है कि उच्च न्यायालय निचले न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करेगा । किन्तु, यह एक संपूर्ण नियम नहीं है । इसके कुछ सुस्थिर मान्यताप्राप्त अपवाद हैं, जहां (i) निचले न्यायालय ने तात्विक साक्ष्यों की अवहेलना की है या साक्ष्यों के आधार पर कार्य नहीं किया है, (ii) न्यायालयों ने त्रुटिपूर्ण विधि को लागू करते हुए, साबित तथ्यों के आधार पर गलत निष्कर्ष निकाले हैं, (iii) न्यायालयों ने दोषपूर्ण तौर पर सबूत के भार अधिरोपित किए हैं । एक विनिश्चय जो किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं होता है वह मात्र उन मामलों को निर्दिष्ट नहीं करता है जहां साक्ष्य की संपूर्णता अवहेलना की गई है अपितु उन मामलों को भी निर्दिष्ट करता है जहां साक्ष्य जो संपूर्णत: लिए गए हैं, युक्तियुक्त तौर पर निष्कर्षों का समर्थन करने में समर्थ नहीं होते हैं ।"

38. अत्यधिक सम्मानपूर्वक, उच्च न्यायालय द्वारा विरचित दोनों प्रश्नों में से कोई भी प्रश्न विधि का प्रश्न नहीं है, विधि के सारवान् प्रश्न होने की बात तो दूर । उच्च न्यायालय के समक्ष किसी दस्तावेज के निर्वचन या विधिक प्रभाव के बारे में कोई संविवाद नहीं था, न ही किसी दस्तावेज का अर्थान्वयन करने या अन्यथा में विधि के सिद्धांत को गलत रूप से लागू करने का था जिससे विधि का प्रश्न उद्भूत । उच्च न्यायालय

के समक्ष ऐसा कोई विवाद योग्य विवाद्यक नहीं था जो सुस्थिर विधि के सिद्धांतों और/या पूर्व-निर्णयों के अंतर्गत आता था ।

39. किसी भी पक्षकार का यह पक्षकथन नहीं है कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा किसी तात्विक प्रश्न पर दिया गया विनिश्चय किसी सुस्थिर विधि के प्रश्न का अतिक्रमण करता है या अनुचितता द्वारा दूषित है । यह किसी भी पक्षकार का पक्षकथन नहीं है कि संपूर्ण रूप से लिए गए साक्ष्य प्रथम अपील न्यायालय के निष्कर्षों का युक्तियुक्त रूप से समर्थन नहीं करता है या यह कि प्रथम अपील न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्यों का बेतुका और/या अनुचित तरीके से निर्वचन किया है । किसी भी पक्षकार का यह भी पक्षकथन नहीं है कि प्रथम अपील न्यायालय ने किसी सुस्थिर विधिक सिद्धांत की अवहेलना करते हुए या उसके प्रतिकूल कार्य करते हुए अपना विनिश्चय दिया है ।

40. प्रथम अपील न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्यों की सविस्तार परीक्षा की है और यह सकारण निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी-प्रतिवादी, वाद परिसरों के एक भाग का स्वामी था और प्रत्यर्थी-वादी, वाद परिसरों के शेष अन्य भाग का स्वामी था । यह निष्कर्ष, तर्कों और हक के आबद्धकारी दस्तावेजों पर आधारित है जिनमें रजिस्ट्रीकृत हस्तांतरण विलेख सम्मिलित है जिसके द्वारा क्रमशः, अपीलार्थी-प्रतिवादी के हित-पूर्वाधिकारियों और प्रत्यर्थी-वादी ने वाद परिसरों में हक अर्जित किया था । किसी साबित तथ्य से त्रुटिपूर्ण निष्कर्ष नहीं निकाले गए थे । न ही गलत तौर पर सबूत का भार स्थानांतरित किया गया था ।

41. विधि का द्वितीय प्रश्न, अर्थात् यह प्रश्न कि क्या प्रथम अपील न्यायालय, यह अभिनिर्धारित करने में सही था कि वादी, वाद संपत्ति के उस आधे भाग के संबंध में हक की घोषणा कराने का हकदार था जैसा कि ऊपर मत व्यक्त किया गया है, जो कि प्रत्यर्थी-वादी के पक्ष में विनिश्चित किया गया है वह अभिवचनों और साक्ष्यों पर आधारित है । प्रथम अपील न्यायालय का विनिश्चय जिसके द्वारा वाद संपत्ति में प्रत्यर्थी-वादी को आधे भाग के संबंध में घोषणा कराने का हक विनिश्चित किया गया है, द्वितीय अपील के अधीन हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है ।

42. उच्च न्यायालय द्वारा विरचित प्रथम प्रश्न अर्थात् यह प्रश्न कि क्या निचला न्यायालय/अपील न्यायालय प्रत्यर्थी-वादी के कब्जे के अनुतोष को इनकार करने में सही था तब जबकि अपील न्यायालय ने प्रत्यर्थी-वादी को अंत:कालीन लाभों को मंजूर किया था जो इस त्रुटिपूर्ण तथ्यात्मक आधार-वाक्य पर आधारित था कि प्रथम अपील न्यायालय ने प्रत्यर्थी-वादी को अंत:कालीन लाभों को मंजूर किया था जो प्रथम अपील न्यायालय ने नहीं किया था ।

43. प्रथम प्रश्न, किसी प्रकार से विधि का प्रश्न नहीं है, मामले में कोई विधि का सारवान् प्रश्न अंतर्वलित होने की बात तो दूर । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि :–

> **"8. विधि का सारवान् प्रश्न सं. 1 –**
>
> विद्वान् प्रथम अपील न्यायाधीश ने वादपत्र अनुसूचित संपत्ति के संबंध में आधे भाग के अधिकार की घोषणा करने के पश्चात्, कब्जे की बरामदगी के अनुतोष को इनकार कर दिया, इस आधार पर कि प्रतिवादियों ने यह दर्शित करने के लिए दस्तावेजों को प्रस्तुत किया है कि वे संपत्ति के कब्जे और उपभोग में हैं (प्रदर्श बी.9 से बी.32) । प्रतिवादी द्वारा फाइल लिखित कथन में ऐसा कोई अभिवचन नहीं है कि उसने संपूर्ण वादपत्र अनुसूचित संपत्ति के संबंध में प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से विहित हक प्राप्त कर लिया है । विद्वान् प्रथम अपील न्यायाधीश ने एक ओर तो वाद संपत्ति के संबंध में कब्जे की बरामदगी प्रदान करने के अनुतोष को नामंजूर कर दिया किन्तु दूसरी ओर, वाद संस्थित करने के तीन वर्ष पूर्व तक के अंत:कालीन लाभों को मंजूर किया है । दोनों उपर्युक्त उक्त निष्कर्ष, पूर्णतया एक-दूसरे के विपरीत है । जब एक बार कब्जे की बरामदगी से इनकार कर दिया गया तो कोई अंत:कालीन लाभ मंजूर करने का प्रश्न ही नहीं उठता है । वादी के पक्ष में वादपत्र अनुसूचित संपत्ति में आधे भाग के अधिकार की घोषणा करने के पश्चात्, विद्वान् अपील न्यायाधीश को वादपत्र अनुसूचित संपत्ति में आधे भाग के संबंध में कब्जे की बरामदगी भी मंजूर कर लेना चाहिए था । दोनों निचले न्यायालयों ने समवर्ती तौर पर यह अभिनिर्धारित किया है कि वादी और प्रतिवादी के बीच

मकान मालिक-किराएदार का कोई संबंध नहीं था । ऐसी परिस्थितियों में, इस मामले में अंत:कालीन लाभ देने का प्रश्न ही उद्भूत नहीं होता है । जहां तक विद्वान् अपील न्यायाधीश द्वारा वादपत्र अनुसूचित संपत्ति के आधे भाग के संबंध में कब्जे की बरामदगी का अनुतोष देने से इनकार करने का संबंध है, इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप अपेक्षित है, तद्नुसार, सारवान् विधि के प्रश्न सं. 1 का उत्तर दिया जाता है ।

9. अंत में, 2000 की द्वितीय अपील सं. 558 मंजूर की जाती है और अधीनस्थ न्यायाधीश, कुंभकोनम के न्यायालय में फाइल 1998 की ए.एस. सं. 16 में विद्वान् प्रथम अपील न्यायाधीश द्वारा पारित डिक्री और निर्णय को वाद अनुसूचित संपत्ति के आधे भाग के संबंध में कब्जे की बरामदगी के लिए वाद खारिज करने के संबंध में अपास्त किया जाता है । वादी, डिक्री के निष्पादन के समय पर अधिवक्ता आयुक्त की सहायता से वाद अनुसूचित संपत्ति के आधे भाग की पहचान करने के पश्चात् उसे बरामद करने का हकदार है । दूसरे शब्दों में, अधीनस्थ न्यायाधीश, कुंभकोनम के न्यायालय में फाइल 1988 के ए.एस. सं. 16 में विद्वान् प्रथम अपील न्यायाधीश की डिक्री की, एतद्द्वारा पुष्टि की जाती है । 2000 की द्वितीय अपील सं. 64 खारिज की जाती है । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है । परिणामत:, संबंधित प्रकीर्ण याचिका बंद की जाती है ।"

44. अत्यधिक सम्मानपूर्वक, उच्च न्यायालय ने प्रत्यक्षत: अपने इस निष्कर्ष में त्रुटि कारित की है कि प्रथम अपील न्यायालय के निष्कर्षों में विरोधाभास है जिसमें प्रथम अपील न्यायालय ने प्रत्यर्थी-वादी द्वारा फाइल वाद संपत्ति के कब्जे की बरामदगी का अनुतोष देने से इनकार कर दिया था, किन्तु, वाद संस्थित करने के पूर्व तीन वर्षों तक के लिए प्रत्यर्थी-वादी को अंत:कालीन लाभों को मंजूर कर लिया था ।

45. 'अंत:कालीन लाभों' का अभिप्राय उन लाभों से है जो किसी व्यक्ति को संपत्ति के दोषपूर्ण कब्जे से आय प्राप्त होती है किन्तु इनमें सुधारों के कारण हुए लाभ सम्मिलित नहीं होते हैं । तो विचारण न्यायालय द्वारा और न ही प्रथम अपील न्यायालय द्वारा वाद परिसरों

के किसी भाग के संबंध में अपीलार्थी-वादी का दोषपूर्ण कब्जा होने के बारे में कोई निष्कर्ष निकाला गया है । प्रथम अपील न्यायालय ने कहीं भी अभिव्यक्ति 'अंत:कालीन लाभ' का प्रयोग नहीं किया है । उच्च न्यायालय ने वाद परिसरों में प्रत्यर्थी-वादी के भाग के उपयोग, अधिभोग और उपभोग द्वारा वंचित अपीलार्थी को लाभ की प्रतिपूर्ति करना मंजूर किया था और/या दूसरे शब्दों में, वाद परिसरों के उक्त भाग से प्राप्त आय या उसके उपयोग, अधिभोग और उपभोग के लिए प्रभारों की प्रतिपूर्ति करना मंजूर किया था ।

46. कब्जे की डिक्री, स्वत: ही संपत्ति में हक और स्वामित्व की घोषणा की डिक्री नहीं होती है । यह सुस्थिर है कि जहां वादी यह सिद्ध करना चाहता है कि प्रतिवादी का मूल कब्जा अनुज्ञेय था वहां इस अभिकथन को साबित करने का दायित्व वादी पर होता है और यदि वह ऐसा करने में असफल रहता है तो यह उपधारणा की जा सकती है कि कब्जा प्रतिकूल था जब तक कि इसके प्रतिकूल कोई साक्ष्य न हो ।

47. अपीलार्थी-प्रतिवादी ने वाद में फाइल अपने लिखित कथन में, वाद संपत्ति में प्रत्यर्थी-वादी के हक और स्वामित्व से इनकार किया है । अपीलार्थी-प्रतिवादी ने यह प्राख्यान किया है कि अपीलार्थी-प्रतिवादी, वाद संपत्ति का स्वामी है और प्रारंभ से ही स्वामी के रूप में वाद परिसरों के कब्जे और अधिभोग में है ।

48. हमारे सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी-वादी को कब्जा मंजूर करने की कार्यवाही में विधिक त्रुटि कारित की है, इस आधार पर कि अपीलार्थी-प्रतिवादी ने प्रतिकूल कब्जे की प्रतिरक्षा नहीं ली है, इस सुस्थिर सिद्धांत की अवहेलना करते हुए कि अनुतोषों के लिए वादी का दावा वादी के पक्षकथन की मजबूती पर विनिश्चित होता है और न कि उसकी कमजोरियों पर, यदि कोई विरोधी पक्षकार का पक्षकथन है : जैसा कि प्रिवी कौंसिल द्वारा **बाबा करतार सिंह** बनाम **दयाल दास**[1] वाले मामले में उद्घोषित किया गया है ।

49. अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा फाइल अभिवचनों से, यह प्रत्यक्षत: स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी-प्रतिवादी ने 75 वर्ष पूर्व निष्पादित हस्तांतरण विलेख के आधार पर वाद संपत्ति के स्वामित्व के अधिकार

---

[1] ए. आई. आर. 1939 पी. सी. 201.

का दावा किया है । अपीलार्थी-प्रतिवादी ने अपने पिता द्वारा निष्पादित निर्मोचन विलेख के आधार पर वर्ष 1966 से निरंतर कब्जे मे रहने का दावा किया है । दूसरे शब्दों में, अपीलार्थी-प्रतिवादी ने वाद संस्थित किए जाने के लगभग 28 वर्षों के पूर्व से स्वामी के रूप में वाद परिसरों के कब्जे में होने का दावा किया है ।

50. इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, जहां अपीलार्थी-प्रतिवादी वाद संपत्ति के मात्र एक भाग का स्वामी था, किन्तु स्वीकृतत: वह संपूर्ण वाद संपत्ति पर काबिज रहा है और अपीलार्थी-प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में स्वामी के रूप में वर्षों से निरंतर काबिज रहने का दावा किया है, अपीलार्थी की अपने लिखित कथन में प्रतिरक्षा प्रभावी और सारत: प्रतिकूल कब्जे के रूप में थी, यद्यपि प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वामित्व का विस्तारपूर्वक अभिवचन नहीं किया गया था । तथापि, इस न्यायालय के लिए इस प्रश्न की परीक्षा करना आवश्यक नहीं है कि क्या अपीलार्थी-प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जे द्वारा हक का दावा करने का हकदार था या नहीं ।

51. कब्जे की डिक्री का दावा करने वाले व्यक्ति को ऐसा कब्जा प्राप्त करने के लिए अपने हक को सिद्ध करना होता है और यह भी सिद्ध करना होता है कि उसका दावा परिसीमा विधियों द्वारा वर्जित नहीं है । उसे यह अवश्य ही दर्शित करना चाहिए कि वह अभिकथित अतिचारी द्वारा कब्जा प्राप्त करने के पूर्व कब्जे में था ।

52. युक्ति 'कब्जा हक का अनुसरण करता है' संपत्ति में सीमित रूप से लागू होती है, जिसमें इसकी प्रकृति को ध्यान में रखते हुए वस्तुत: और अनन्य अधिभोग की गुंजाइश नहीं होती है, जैसा कि सभी की पहुंच वाली खुली जगहों पर होता है । यह उपधारणा कि कब्जा हक का अनुसरण करते हुए समझा जाना चाहिए, मात्र वहां उद्भूत होता है जहां किसी भी व्यक्ति का कब्जे होने का सुनिश्चित सबूत नहीं होता है । इस मामले में, यह स्वीकृत है कि अपीलार्थी-प्रतिवादी काबिज है और न कि प्रत्यर्थी-वादी काबिज है ।

53. स्थावर संपत्ति के कब्जे की बरामदगी के लिए वाद, परिसीमा अधिनियम, 1963 द्वारा शासित होता है । परिसीमा अधिनियम, 1963

की धारा 3 ऐसा कोई वाद संस्थित करने के लिए वर्जित करता है जो उक्त अधिनियम, 1963 में विहित परिसीमा अवधि समाप्त होने के पश्चात् फाइल की जाती है । न्यायालय परिसीमा अवधि समाप्त होने के पश्चात् वाद को खारिज करने के लिए आबद्ध होते हैं, क्योंकि परिसीमा अवधि के अभिवाक् को प्रतिरक्षा में नहीं लिया जा सकता है ।

54. स्थावर संपत्ति की बरामदगी के लिए वादों के लिए परिसीमा अवधि, परिसीमा अधिनियम, 1963 की अनुसूची के भाग V में विहित है और विशिष्टत: उसकी धारा 64 और 65 में है जिन्हें सुविधा के लिए नीचे उपवर्णित किया जा रहा है :-

"भाग V - स्थावर संपत्ति संबंधी वाद

वाद का वर्णन	परिसीमा काल	वह समय, जब से काल चलना आरंभ होता है
.....	.....	.....
64. स्थावर संपत्ति के कब्जे के लिए, जो पूर्ववर्ती कब्जे के आधार पर हो और हक के आधार पर न हो जबकि वादी सम्पति पर कब्जा रखते हुए बेकब्जा कर दिया गया है ।	बारह वर्ष	बेकब्जा किए जाने की तारीख
65. हक के आधार पर स्थावर सम्पति या उसमें के किसी हित के कब्जे के लिए । स्पष्टीकरण - इस अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए - (क) जहां कि वाद शेषभोगी, या (भू-स्वामी से भिन्न) उत्तरभोगी, या वसीयतदार द्वारा है, वहां प्रतिवादी का कब्जा केवल तब	बारह वर्ष	जब प्रतिवादी का कब्जा वादी के प्रतिकूल हो जाता है ।

प्रतिकूल हो गया समझा जाएगा जबकि, यथास्थिति, शेषभोगी, उत्तरभोगी या वसीयतदार को सम्पदा मे कब्जे का हक उद्भूत होता है :		
(ख) जहां कि दावा हिन्दू या मुस्लिम नारी की मृत्यु पर स्थावर सम्पत्ति के कब्जे के हकदार हिन्दू या मुस्लिम द्वारा हो, वहां प्रतिवादी का कब्जा केवल तब प्रतिकूल हो गया समझा जाएगा जब उस नारी की मृत्यु होती है :		
(ग) जहां कि वाद किसी डिक्री के निष्पादन में हुए विक्रय के क्रेता द्वारा हो, वहां यदि निर्णीतऋणी विक्रय की तारीख को बेकब्जा था, तो क्रेता उस निर्णीतऋणी का प्रतिनिधि समझा जाएगा, जो बेकब्जा था ।		

55. वादपत्र में ऐसी किसी बात के अभाव में कि किस तारीख को अपीलार्थी-प्रतिवादी और/या उसके हित-पूर्वाधिकारी ने वाद संपत्ति को कब्जे में लिया था और यह दर्शित करने के लिए किसी ऐसी बात के अभाव में कि कब्जे के लिए डिक्री का अनुतोष परिसीमा अवधि के भीतर था, उच्च न्यायालय, प्रथम अपील न्यायालय के निष्कर्ष को उलट नहीं सकता था और प्रत्यर्थी-वादी के कब्जे की बरामदगी के अनुतोष को मंजूर नहीं कर सकता था तब जब कि अपीलार्थी-प्रतिवादी ने यह अभिवाक् किया था कि वह वर्ष 1966 से पूर्ण अधिकारों सहित स्वामी के रूप में वाद परिसरों पर पूर्णत: काबिज रहा है तब से जब उसके पिता ने उसके पक्ष में निर्मोचन विलेख निष्पादित किया था और/या दूसरे शब्दों में, वाद

संस्थित किए जाने की तारीख तक लगभग 28 वर्ष पूर्व से वह वाद परिसरों पर काबिज रहा है ।

56. जैसा कि **पेरी** बनाम **क्रिशहोल्ड**[1] वाले मामले में, प्रिवी कौंसिल ने अभिनिर्धारित किया है कि इस बारे में विवाद नहीं किया जा सकता है कि यदि कोई व्यक्ति स्वामी की हैसियत में भूमि पर काबिज है और स्वामित्व के अधिकारों का शांतिपूर्वक और साधारण तौर पर प्रयोग कर रहा है तो सभी के विरुद्ध उसका सुनिश्चित तौर पर अच्छा स्वामित्व माना जाएगा किन्तु अधिकारपूर्ण स्वामित्व – और यदि अधिकारपूर्ण स्वामित्व निरंतर जारी नहीं रहता है और मामले में लागू परिसीमा संविधि के उपबंधों द्वारा विहित अवधि के भीतर विधि द्वारा अपने कब्जे के अधिकार का प्राख्यान नहीं करता है तो उसका अधिकार हमेशा के लिए समाप्त हो जाता है और कब्जाधारी स्वामित्व या कब्जा विषयक स्वामित्व पूर्ण हक अर्जित कर लेता है ।

57. द्वितीय अपील को ग्रहण करने और विनिश्चित करने के लिए पूर्ववर्ती शर्त विधि का सारवान् प्रश्न मौजूद होना है और जब कभी उच्च न्यायालय द्वारा प्रश्न विरचित किया जाता है तो उच्च न्यायालय को यह दर्शित करना होता है कि प्रश्न, विधि का प्रश्न है और न कि तथ्यों का प्रश्न है, यह भी दर्शित करना होता है कि प्रश्न, एक सारवान् विधि का प्रश्न है ।

58. **कोन्डिबा दगदू कदम** बनाम **सावित्री बाई सोपान गुजर**[2] वाले मामले में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि :–

> "संशोधन के पश्चात्, द्वितीय अपील मात्र तभी फाइल की जा सकती है जब मामले में विधि का सारवान् प्रश्न अंतर्वलित है । अपील के ज्ञापन में स्पष्टत: अंतर्वलित विधि के सारवान् प्रश्न का कथन होना चाहिए और उच्च न्यायालय का ऐसे प्रश्न की मौजूदगी के बारे में स्वयं का समाधान होना चाहिए । यदि समाधान हो जाता है तो उच्च न्यायालय, मामले में अंतर्वलित विधि का सारवान्

---

[1] (1907) पी. सी. 73.

[2] (1999) 3 एस. सी. सी. 722.

प्रश्न विरचित करता है । द्वितीय अपील में इस प्रकार विरचित प्रश्न पर ही सुने जाने की अपेक्षा होती है । तथापि, प्रत्यर्थी को अपील की सुनवाई के समय पर यह तर्क देने का अधिकार है कि न्यायालय के समक्ष मामले में कोई विधि का सारवान् अंतर्वलित नहीं है । धारा का परंतुक, उच्च न्यायालय को विधि के सारवान् मुद्दे पर अपील की सुनवाई करने के लिए उच्च न्यायालय की शक्तियों की अभिस्वीकृति करता है यद्यपि इसे विरचित नहीं किया गया है यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य के साथ कि मुकदमेबाज के साथ कोई अन्याय नहीं होगा जहां ऐसा प्रश्न या तो भूल या अज्ञानतावश स्वीकृति के समय पर विरचित नहीं किया गया था ।

समय के साथ-साथ यह बार-बार नोटिस किया गया है कि अपील के ज्ञापन में विधि के ऐसे सारवान् प्रश्न का कथन किए बिना और स्वीकृति के समय पर उसे विरचित किए बिना, उच्च न्यायालयों द्वारा नोटिसें जारी की गई हैं और साधारणतया, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन विहित प्रक्रिया पर ध्यान दिए बिना द्वितीय अपीलों को विनिश्चित किया गया है । अधिकतर मामलों में यह भी पाया गया है कि विधि का प्रश्न और विधि का सारवान् प्रश्न के बीच विभेद करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है । इस धारा के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए, प्रथम अपील न्यायालय के तथ्य के निष्कर्षों के साथ फेरफार करने की कोशिश की गई है । विवेक में यह ध्यान रखना होता है कि अपील का अधिकार, मुकदमे से संबद्ध न तो नैसर्गिक अधिकार है और न ही अंतर्निहित अधिकार है । सारवान् कानूनी अधिकार होने के नाते, यह सुसंगत समय पर प्रवर्तित विधि के अनुसार विनियमित होता है, धारा में उल्लिखित शर्तों का, द्वितीय अपील ग्रहण करने के पूर्व कठोरत: पूरा होना चाहिए और किसी भी न्यायालय को उन आधारों को जोड़ने या बढ़ाने की शक्ति नहीं होती है । द्वितीय अपील मात्र साम्यिक आधारों विनिश्चित नहीं किया जा सकता है । तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों में, चाहे जो भी त्रुटि हों, इस धारा के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उच्च

न्यायालय द्वारा फेरफार नहीं किया जा सकता है । विधि का सारवान् प्रश्न, तथ्य के सारवान् प्रश्न से विभेदनीय होता है ।

यदि, विधि का प्रश्न, सारवान् प्रश्न के रूप में संबंधित उच्च न्यायालय के बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा या प्रिवी कौंसिल द्वारा या फेडरल न्यायालय द्वारा या उच्चतम न्यायालय द्वारा पहले ही विनिश्चित किया जा चुका है तो मामले के तथ्यों में मात्र गलत तौर पर इसे लागू करना विधि का सारवान् प्रश्न नहीं समझा जाएगा । जहां विधि का मुद्दा अभिवाचित नहीं किया गया है या किसी तथ्यात्मक प्ररूप के अभाव में पक्षकारों के बीच उद्भूत होना पाया जाता है वहां मुकदमेबाज को यह अभिवाक् करना मंजूर नहीं किया जाना चाहिए कि प्रश्न, द्वितीय अपील में विधि के सारवान् प्रश्न के रूप में है । मामले के तथ्यों, दस्तावेजी साक्ष्यों या प्रविष्टियों का अर्थान्वयन और दस्तावेज की अंतर्वस्तुओं का मात्र मूल्यांकन करने से, विधि का सारवान् प्रश्न उद्भूत होना अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है । किन्तु, जहां यह पाया जाता है कि प्रथम अपील न्यायालय ने ऐसी अधिकारिता के अधीन कार्य किया है जो उसमें निहित नहीं है तो उसे विधि का सारवान् प्रश्न समझते हुए, द्वितीय अपील में अधिनिर्णीत किया जा सकता है । जहां प्रथम अपील न्यायालय ने न्यायिक तरीके से अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए कार्य किया है वहां यह या तो विधि या प्रक्रिया की त्रुटि के निबंधनों में नहीं आ सकता है जिससे कि द्वितीय अपील में हस्तक्षेप अपेक्षित हो जाता हो ।"

59. जब कोई विधि का सारवान् प्रश्न विरचित नहीं किया जाता है किन्तु, द्वितीय अपील, उच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चित कर दिया जाता है तो उच्च न्यायालय का निर्णय विधि में दूषित हो जाता है जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **विश्वनाथ घोष** बनाम **गोविंद घोष**[1] वाले मामले में, अभिनिर्धारित किया गया है । विधि का सारवान् प्रश्न, विरचित करना आज्ञापक है और द्वितीय अपील के ज्ञापन में उल्लिखित आधार

---

[1] ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 152.

के प्रति मात्र निर्देश, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के आज्ञापक का समाधान नहीं कर सकता है ।

60. द्वितीय अपील के अधीन उच्च न्यायालय का निर्णय और आदेश में मामले में अंतर्वलित किसी विधि के प्रश्न पर चर्चा या विनिश्चय नहीं किया गया है, इसलिए सारवान् विधि का प्रश्न अंतर्वलित होना नहीं कहा जा सकता है ।

61. जैसा कि इस न्यायालय ने मात्र यह अभिलिखित करते हुए कि मामले में विधि का कोई सारवान् प्रश्न अंतर्वलित नहीं है, अकारण आदेश के साथ द्वितीय अपील खारिज करने की परिपाटी की बार-बार निंदा की है, उच्च न्यायालय भी विधि के प्रश्न पर चर्चा किए बिना द्वितीय अपील मंजूर नहीं कर सकता है जिसे उच्च न्यायालय को करना चाहिए ।

62. उपर्युक्त चर्चा किए गए कारणों से ये अपीलें मंजूर की जाती हैं । अपील के अधीन उच्च न्यायालय का निर्णय और आदेश उस सीमा तक अपास्त किया जाता है जिस सीमा तक कि उसके द्वारा 2000 की द्वितीय अपील सं. 558 मंजूर की गई है और प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय और डिक्री को पुन: प्रत्यावर्तित किया जाता है ।

अपीलें मंजूर की गई ।

क.